समयसार, गाथा १६८, आस्रव अधिकार। **अब, रागादि के साथ अमिश्रित भाव की उत्पत्ति बतलाते हैं:–** अर्थात् कि राग के साथ ज्ञान का जो एकत्व था, वह अनादि संसार था। उस राग से भिन्न पड़कर ज्ञानसवभाव... भले राग रहा, परन्तु राग से भिन्न पड़कर ज्ञानस्वभाव प्रगट हुआ, उसका स्वरूप बताते हैं।

पक्के फलम्हि पडिए जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेदि।।१६८।।

फल पक्व खिरता, वृन्त सह संबंध फिर पाता नहीं।
त्यों कर्मभाव खिरा, पुनः जीव में उदय पाता नहीं।।१६८।।

टीका : जैसे पका हुआ फल.. आम आदि जो पका फल होता है न! **एक बार डण्ठल से गिर जाने पर..** उसके डण्ठल से एक बार गिर गया, **फिर वह उसके साथ सम्बन्ध को प्राप्त नहीं होता,..** आम, अमरूद (टूटने पर) फिर से उसके डण्ठल के साथ जुड़ता नहीं है। **इसी प्रकार कर्मोदय से उत्पन्न होनेवाला भाव..** जीव में पुण्य और पाप के भाव मेरे हैं, ऐसा उत्पन्न हुआ भाव। अकेले राग-द्वेष नहीं; राग-द्वेष हैं, वे मेरे हैं – ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, **उत्पन्न होनेवाला भाव जीवभाव से एक बार अलग होने**

पर.. अन्तर में स्वभाव की दृष्टि करके, चैतन्य भगवान परिपूर्ण परमात्मा का आश्रय करके एक बार यह सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ तो मिथ्यात्व का जो भाव था, वह नष्ट हो गया। राग की एकताबुद्धि का जो मिथ्यात्वभाव था; वह स्वभाव की एकताबुद्धि के भाव द्वारा नाश हुआ।

जीवभाव को.. ऐसा है, हों! द्रव्य नहीं, जीव भाव। कर्म से उदय से होता जीवभाव। ये पुण्य और पाप मेरे हैं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। आहाहा! **एक बार अलग होने पर..** सम्यग्दर्शन से आत्मा को जाना, माना, अनुभव किया, इससे उसका मिथ्यात्व तो एक बार पृथक् पड़ा। आहाहा! **फिर जीवभाव को प्राप्त नहीं होता।** फिर से, वह मिथ्यात्वभाव, जीवभाव को प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्वभाव, जीवभाव नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्वभाव, जीवभाव है। जड़ के भाव का यहाँ काम नहीं है। जड़कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से अपने स्वभाव को भूलकर, जो राग-द्वेष मेरे—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसे यहाँ जीव का भाव कहने में आता है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : एक बार ऐसा कहे कि जीव का भाव नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से? वह जीव का स्वरूप नहीं, इस अपेक्षा से (कहा है)। यहाँ तो उसकी पर्याय में स्वभाव के भान बिना पर्याय में जो पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव, वे मेरे हैं—(ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है)। वे शुभ-अशुभभाव भले हों, पश्चात् शुभ-अशुभभाव तो रहेंगे, परन्तु वे शुभ-अशुभभाव मेरे हैं—ऐसा जो जीव का मिथ्यात्वभाव। आहाहा!

एक बार अलग होने पर.. आहाहा! यहाँ तो अप्रतिहत की ही बात है। जिसने एकबार चैतन्य भगवान अनन्त गुण गम्भीर तत्त्व दृष्टि में लिया और स्वभाव के साथ एकता की, उसे जीवभाव जो मिथ्यात्वभाव था, वह छूट गया, वह फिर से उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा! ऐसा है। आचार्यों की बात ही अप्रतिहत की बात है।

भगवान पूर्णानन्दस्वरूप पूर्ण चिद्घन ऐसी द्रव्य वस्तु है। वस्तु है, उसका जहाँ भान होकर प्रतीति होकर अनुभव हुआ, तब उस जीव में मिथ्यात्वभाव था, वह नाश हो गया। फिर से अब वह मिथ्यात्वभाव होगा नहीं। यहाँ तो यह कहते हैं। यहाँ अब

गिरनेवाला नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मूल पहली बात मिथ्यात्व और समकित, इन दो की बात ही पहली समझना कठिन है। बाद में तो राग-द्वेष होवें और टलें और अस्थिरता हो, वह सब साधारण बात है। वह कोई चीज़ (नहीं है)। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द और पूर्ण अतीन्द्रिय गुण का गम्भीर भगवान है, उसके साथ पुण्य और पाप, वे मेरे हैं—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह जीव का भाव है, ऐसा कहा न? जड़कर्म है, वह तो जड़ अजीव में गया परन्तु यह भाव जो खिरा है कि पुण्य-पाप मेरे, वह भाव जीव का भाव है। मिथ्यात्व (भाव है)। आहाहा! समझ में आया?

यह मिथ्यात्वभाव **एक बार अलग होने पर फिर जीवभाव को प्राप्त नहीं होता।** आहाहा! यह मिथ्यात्वभाव जो... शरीर, वाणी, मन तो एक ओर भिन्न रहे परन्तु पुण्य और पाप का विकल्प जो विकृतभाव है, उन पर जब तक दृष्टि है, तब तक उसे जीव का मिथ्यात्वभाव कहने में आता है। कठिन काम है। चाहे तो पंच महाव्रतधारी त्यागी हुआ हो, हजारों रानियाँ छोड़कर मुनि हुआ हो परन्तु अन्तर के ये शुभपरिणाम जो हैं, वे मेरे हैं—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... आहाहा! वह जीव का भाव है, वह जीव में हुआ भाव है।

एक ओर ऐसा कहना कि मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद और कषाय सब पुद्गल के परिणाम हैं। यह पहले आ गया है न? ५०-५५ (गाथा)। मिथ्यात्व और सब पुद्गल के परिणाम कहे। किस अपेक्षा से? जीव का स्वभाव नहीं, इस अपेक्षा से वह बात की है। परन्तु होते हैं, तब जीव में होते हैं। आहाहा! वे कर्म के कारण नहीं तथा द्रव्यस्वभाव के कारण नहीं। पर्याय में राग है, वह मेरा है, ऐसी बुद्धि। आहाहा! पर्यायबुद्धि कहना चाहते हैं।

त्रिकाली चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का परमात्मस्वरूप विराजता है, उसका उसे आदर नहीं है। उसका उसे स्वीकार नहीं है और जो कृत्रिम क्षणिक विकृत दशा-दया, दान, काम, क्रोधभाव (होते हैं), वे मेरे, यह जीव का मिथ्यात्वभाव है। यह मिथ्यात्वभाव एक बार जीवस्वभाव की एकत्वबुद्धि से, राग की एकत्वबुद्धि ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह स्वभाव की एकत्वबुद्धि से नाश हुआ, वह फिर से उत्पन्न होनेवाला नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वरूप।

इस प्रकार ज्ञानमय.. आत्मामय, ऐसा। पश्चात् जो अस्थिरता के राग-द्वेष हैं, उनकी यहाँ गिनती नहीं गिनी है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के परिपूर्ण स्वभाव

का अनुभव होकर प्रतीति होने से... आहाहा! वह **ज्ञानमय भाव..** तब ज्ञानमय भाव हुआ। वह (पहले) मिथ्यात्वभाव था। पर्यायबुद्धि में राग को अपना मानना, वह मिथ्यात्वभाव था। वह मिथ्यात्वभाव, स्वभावभाव के भान द्वारा छोड़ा तो यह ज्ञानमय भाव रहा। आत्मस्वभाव भाव हुआ। आहाहा! उसे यह **रागादि के साथ न मिला हुआ ज्ञानमय भाव..** है? आहाहा! ज्ञानमय अर्थात् चैतन्यस्वरूप है, भगवान के ज्ञानमय अर्थात् स्वभावमय - आत्मामय भाव। वह राग के साथ नहीं मिला हुआ भाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग के साथ नहीं मिला हुआ ऐसा भाव अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग कहा न, राग की एकताबुद्धि से जो मिथ्यात्वभाव था, वह स्वभाव की एकताबुद्धि से मिटा, वह ज्ञानभाव अब राग की एकताबुद्धि में नहीं आयेगा। समझ में आया? गाथायें तो एक-एक गाथा समयसार की, प्रवचनसार की अलौकिक बातें हैं! आहा!

अरे! यह भगवान अन्दर भगवानस्वरूप आत्मा विराजता है। तीनों काल निरावरण अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु है। उसे छोटे में छोटा राग का विकल्प भगवान की भक्ति आदि का हो या कोई भी (शुभ विकल्प हो), उस राग को आत्मा के स्वभाव के साथ एकत्वबुद्धि की, वह मिथ्यात्वभाव जीव का भाव कहा। वह जीव का भाव एक बार ज्ञानस्वभाव के भाव की एकाग्रता से नाश हुआ, वह फिर से मिथ्यात्व उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा!

इस प्रकार ज्ञानमय.. आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतराग -स्वरूप, ऐसे अनन्त गुण की परिणतिरूप भाव। आहाहा! अनन्त गुण की परिणतिरूप ज्ञानमय ऐसा (भाव), **रागादि के साथ न मिला हुआ..** विकल्प उठे, उसके साथ एकत्वरूप नहीं हुआ। आहाहा! राग होगा अवश्य, परन्तु उसमें एकत्वबुद्धि नहीं रहेगी। उसे भिन्नरूप से जानने में रहेगा। आहाहा! ऐसी बात।

रागादि के साथ न मिला हुआ भाव उत्पन्न होता है। अर्थात् मिथ्यात्वभाव टलने पर अकेला स्वभावभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव टलने पर ज्ञानमय भाव, स्वभावमय भाव, वीतरागमूर्ति प्रभु का भाव उत्पन्न होता है। वह ज्ञानमय भाव कहने में आता है। आहाहा! ऐसी धर्म की (बातें हैं)। मिथ्यात्व (मिटकर) समकित को (प्रगट करने की) यह रीति है, कहते हैं। यह तो शुरुआत की बात है।

भावार्थ : यदि ज्ञान.. अर्थात् आत्मस्वभाव, भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, पूर्ण जिनस्वरूप ही है, उस जिनस्वरूप को। **ज्ञान..** अर्थात् जिनस्वरूप। **एकबार (अप्रतिपाती भाव से) रागादिक से भिन्न परिणमित हो..** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द, ज्ञान, शान्त और वीतरागमूर्ति वह एक बार राग से भिन्न पड़कर... आहाहा! **भिन्न परिणमित हो..** राग परिणमे भले, परन्तु राग से आत्मा का स्वभाव भिन्न पड़कर भिन्न परिणमित हो **तो वह पुनः कभी भी रागादि के साथ मिश्रित नहीं होता।** आहाहा!

आत्मा के आनन्द और ज्ञानस्वभाव की एकता द्वारा मिथ्यात्वभाव—राग का एकताभाव मिट गया, वह ज्ञानभाव के साथ अब फिर से एकरूप नहीं होता। एक ऐसी ही बात यहाँ ली है। फिर से मिथ्यात्व पायेगा, अमुक होगा (यह बात नहीं ली)। आहाहा! यह तो धीर का काम है। यह कहीं बाहर की चीज़ नहीं है। आहाहा!

अन्दर में पूर्णानन्द प्रभु (विराजता है)। उसे भूलकर राग के छोटे में छोटे कण के साथ एकत्वबुद्धि (होवे, वह मिथ्यात्व है)। बन्ध में यह लिया है न? भाई! उपयोग में राग को एक करता है, ऐसा वहाँ लिया है। बन्ध अधिकार। अकेला राग रहता है, ऐसा नहीं लिया। बन्ध अधिकार जो इनने लिया है। उपयोग में राग को एक करता है, वह बन्ध का कारण है, ऐसा वहाँ लिया है। मिथ्यात्व! आहाहा! उपयोग-जानना-देखना, ऐसा जो उपयोग, उसमें उस राग को उपयोग में एकरूप करता है, वही मिथ्यात्व और वही बन्ध का कारण है। ऐसा वहाँ लिया है। बन्ध अधिकार में आगे आयेगा। आहाहा!

यहाँ भी यह लिया। धीर होकर एक बार चैतन्य प्रभु पूर्ण स्वभाव की वीतरागी शक्तियों से भरपूर, वीतरागी शक्तियों से भरपूर! उसमें एक बार राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता करे तो वह ज्ञानमय भाव रहेगा। अर्थात् फिर वीतरागभाव रहेगा। भले चौथे गुणस्थान (में है) परन्तु वह सब वीतरागभाव है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान कोई ऐसा कहते हैं न, समकित तो चौथे में सराग होता है, फिर सातवें में वीतराग होता है। यहाँ तो चौथे से ज्ञानमय कहो या समकितमय कहो या वीतरागमय भाव कहो, (वह शुरु हो जाता है)। ऐसा आया है न भाई इसमें? अब वे कहते हैं कि सातवें में (वीतराग समकित) होता है। अरे.. प्रभु! सुन, भाई! अरे..! भाई! अभी पहली शुरुआत ही हुई नहीं, वहाँ सातवाँ कहाँ से आयेगा? आहाहा!

पहली जड़ ही काटी नहीं। राग का सूक्ष्म विकल्प और उससे भी प्रभु तो अनन्त गुण का सूक्ष्म... आहाहा! ऐसी सूक्ष्मता के साथ सूक्ष्म छोटे में छोटा राग, पर्यायबुद्धि से जिसने एकत्व किया है, उसके जीवभाव को मिथ्यात्वभाव कहते हैं। आहाहा! फिर चाहे तो भले दिगम्बर साधु हो, हजारों रानियाँ छोड़कर पंच महाव्रत पालन करता हो, परन्तु जिसे वह सूक्ष्म स्वरूप त्रिकाल (स्वभाव), उसके साथ यह राग स्थूल है। ऐसे सूक्ष्म, परन्तु अत्यन्त स्थूल पुण्य-पाप अधिकार में कहा है न? अत्यन्त स्थूल शुभराग भी अत्यन्त स्थूल। प्रभु तो अन्दर अनन्त सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव का सागर प्रभु है। आहाहा! उसके साथ यह राग अत्यन्त स्थूल है। आहाहा! पत्थर जैसा अन्दर स्थूल, उसके (साथ) एकत्व किया है। जिसने उस आत्मा के स्वभाव में इस राग का एकत्व माना है, इससे मुझे लाभ होगा, ऐसे माननेवाले ने राग को एकत्वरूप ही माना है। आहाहा! दया, दान, व्रत, परिणाम से...

मुमुक्षु : अज्ञान में कहाँ खबर पड़े कि यह राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे खबर ही कहाँ है? इसके लिये तो यह बात चलती है। आहाहा! व्रत, तप को राग है, कौन कहता है? परन्तु उसे खबर ही कहाँ है? वृत्ति उठती है, वह विकार है और वह स्थूल है, प्रभु तो अन्दर अति सूक्ष्म स्वरूपी भगवान है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्मस्वभावी परमात्मा, उसे स्थूल स्वभावी भावी विकार-राग से जो भिन्न किया... आहाहा! है?

रागादिक से भिन्न परिणमित हो तो वह पुनः कभी भी रागादि के साथ मिश्रित नहीं होता। आहाहा! **इस प्रकार.. उत्पन्न हुआ,..** क्या? **रागादि के साथ न मिला हुआ ज्ञानमय भाव..** उत्पन्न हुआ क्या? वह तो गया। राग की एकताबुद्धि का मिथ्यात्वभाव तो गया। अब उत्पन्न क्या हुआ? पहले का व्यय हो गया। उत्पन्न क्या हुआ? आहाहा! **इस प्रकार उत्पन्न हुआ,..** आहाहा! **रागादि के साथ न मिला हुआ ज्ञानमय भाव सदा रहता है।** जैसे भगवान सदा काल रहता है, वैसे राग की एकता टूटकर ज्ञान और आनन्दमय भाव हुआ, वीतरागी परिणति हुई, (वह) सदाकाल रहती है। परिणति, हों! वस्तु तो वस्तु है, वह नहीं। आहाहा! ऐसा समझना कठिन पड़ता है। इसलिए फिर करो धर्म, पुण्य और पाप के परिणाम। पुण्य के (परिणाम) करे, (इसलिए) उसे हो गया धर्म! आहाहा!

इस प्रकार उत्पन्न हुआ, ज्ञानमय भाव सदा रहता है। आहाहा! पश्चात् वह

राग के साथ एकत्व होता ही नहीं। भगवान की धारा, ज्ञान और आनन्द की धारा, राग की धारा से सदा पृथक् ही रहती है। आहाहा! यह आ गया न अपने! दो धारा—कर्मधारा और ज्ञानधारा। **फिर जीव अस्थिरतारूप से रागादि से युक्त होता है..** राग और विकल्प से एकता जिसने तोड़ी है और स्वभाव की एकता प्रगट हुई है, उसे अब मिथ्यात्वभाव तो उत्पन्न नहीं होता। तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ऐसा चैतन्य का भाव उत्पन्न होता है। वह उत्पन्न हुआ, वह उसे सदा काल (रहता है)। वह भाव सदा काल रहता है। राग से भिन्न पड़ी हुई श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की दशा, वह राग से सदा काल भिन्न रहती है। आहाहा!

फिर जीव अस्थिरतारूप से.. जरा राग आता है। ज्ञानी को जरा अशुभराग और शुभराग आता है। वह अस्थिरता का है, एकत्वबुद्धि का वह नहीं है। आहाहा! **जीव अस्थिरतारूप से..** रागादि कहा न? जरा द्वेष आवे। आहाहा! ज्ञानी को द्वेष का अंश आवे, राग आवे, विषय-वासना आवे, अशुभराग हो और शुभराग भक्ति आदि का भी ज्ञानी को आवे। **अस्थिरतारूप से रागादि से युक्त होता है, वह निश्चयदृष्टि से युक्तता है ही नहीं..** आहाहा! स्वभाव के साथ जुड़ान हुआ, इसलिए अब राग के साथ जुड़ान है ही नहीं। भले अस्थिरतारूप से राग आया, द्वेष आया। आहाहा! है?

निश्चयदृष्टि में उस राग में जुड़ान नहीं है, एकत्वबुद्धि नहीं है न, इसलिए जुड़ान नहीं है। आहाहा! अब ऐसा। सूक्ष्म बातें कब समझना? बाहर में किसी दिन मुश्किल से घण्टे भर निवृत्त हो तो (सुनने को मिले) सामायिक करो और या भक्ति करो और पूजा करो, व्रत करो, अपवास करो... हो गया, जाओ जिन्दगी (लुट जाती है)!

मुमुक्षु : लुट जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लुट गया। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि उस राग के विकल्प में रुका, उसके साथ एकत्वबुद्धि हुई; इसलिए वह मिथ्यात्वभाव हुआ और उस मिथ्यात्वभाव को जिसने एक बार जीव के स्वभाव-सन्मुख होकर; राग से विमुख होकर, स्वभाव के सन्मुख होकर एक बार राग की एकता तोड़ी, उसे अब राग के साथ एकत्व-जुड़ान नहीं होता। राग के साथ एकत्व का जुड़ान नहीं होता। आहाहा! **निश्चयदृष्टि से युक्तता है ही नहीं..** आहाहा! वह तो व्यवहारनय से अस्थिरता है, वह जानता है व्यवहारनय।

और उसके जो अल्प बन्ध होता है.. समकिती को-ज्ञानी को राग की एकता टूटी, उस धर्मी को जो अस्थिरता का राग होता है, उसमें जुड़ान-एकत्वपना नहीं होता, इसलिए इस निश्चयदृष्टि में उसे जुड़ान है नहीं और इस दृष्टि में उसे अल्पबन्ध होता है, वह निश्चयदृष्टि में बन्ध है ही नहीं। आहाहा! अल्प रागादि हों, वह तीव्र विषयवासना (हो) अरे...! रौद्रध्यान हो। आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त संसार का कारण नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्पस्थिति, रस होता है, वह निश्चयदृष्टि में उसका बन्ध गिनने में नहीं आया। आहाहा! उसके साथ जुड़ान नहीं है, इसलिए उसका बन्ध हो, उसे भी यहाँ गिनने में नहीं आया। समझ में आया? ऐसी बात।

क्योंकि अबद्धस्पृष्टरूप से परिणमन निरन्तर वर्तता ही रहता है। यह क्या कहा? जो चौदहवीं-पन्द्रहवीं गाथा में आया न! अबद्धस्पृष्ट! राग के भाव के बन्ध से भिन्न। राग जिसे स्पर्श नहीं हुआ, ऐसा जो अबद्धस्वरूप भगवान है, उसकी राग की एकता टूटकर अबद्धस्वरूप का ज्ञान और भान हुआ, उस अबद्धस्पृष्टपने का परिणमन तो सदा निरन्तर रहा ही करता है। राग की एकताबुद्धि टूटी, उस रागरहित अबद्धस्पृष्ट भाव सदा निरन्तर रहा ही करता है। आहाहा! वीतरागता है। आहाहा! वे इनकार करते हैं कि चौथे गुणस्थान में वीतरागता नहीं होती। अरे.. प्रभु!

वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और परिणमन हुआ, वह वीतरागरूप परिणमन होगा या रागरूप होगा? भले समकित हो और चौथा गुणस्थान हो। आहाहा! वह वीतरागभावरूप भले जघन्य भाव है, उत्कृष्ट तो यथाख्यात हो, तब (होगा), परन्तु जघन्य भाव है, वह वीतरागभावरूप परिणमता है और राग के साथ जुड़ान-एकत्व नहीं है। इसलिए राग के साथ जुड़ान नहीं है और उस राग से कुछ कर्म से थोड़ा रसबन्ध पड़े, वह निश्चयदृष्टि में उसे गिनने में नहीं आता। आहाहा!

अबद्धस्पृष्टरूप से परिणमन निरन्तर वर्तता ही रहता है। सम्यग्दृष्टि को राग के विकल्प की एकता टूटने पर वीतरागभाव की अबद्धस्पृष्ट पर्याय निरन्तर परिणमा ही करती है। आहाहा! एक बार गया और हुआ, यह हुआ तो हुआ ही वह, ऐसा कहते हैं। यह हुआ, वह उसी प्रकार से रहा करता है। आहाहा! राग से सम्बन्ध और बन्धरहित

स्वभाव प्रगट हुआ, वह परिणमन निरन्तर रहा करता है। आहाहा! चाहे तो वह युद्ध में खड़ा हो, समकिती! दोनों भाई लड़े न! बाहुबलिजी और भरत... परन्तु अन्दर में तो अबद्धस्पृष्ट परिणमन निरन्तर रहता ही है। अरे! यह बात कैसे जँचे? उसके ऊपर-ऊपर राग होता है, उसका परिणमन यहाँ अबद्धस्पृष्ट में गिनने में नहीं आया। आहाहा! ऐसा है।

तथा उसे मिथ्यात्व के साथ रहनेवाली प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता.. जो ४१ प्रकृति मिथ्यात्व में बँधती थी। आहाहा! १४८ में से ४१ अधिक अन्दर थी। वह समकित होने पर ४१ प्रकृतियों का बन्ध होता ही नहीं। आहाहा! **मिथ्यात्व के साथ रहनेवाली प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता और अन्य प्रकृतियाँ सामान्य संसार का कारण नहीं हैं;..** यह क्या कहा? दूसरी प्रकृति थोड़ी बँधती है परन्तु सामान्य संसार जो मिथ्यात्व, (उसका कारण नहीं है)। कहेंगे, इसके बाद तुरन्त कहेंगे। **संसार का कारण मिथ्यात्व ही है;...** (कलश ११४ भावार्थ) इस ओर कहेंगे। इस ओर आगे कहेंगे। **संसार का कारण मिथ्यात्व ही है;...** पहली लाईन। वास्तव में मिथ्यात्व ही आस्रव है। वास्तव में मिथ्यात्व ही संसार है। वास्तव में मिथ्यात्व ही पाप है। आहाहा!

उसे मिथ्यात्व के साथ रहनेवाली प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता और अन्य प्रकृतियाँ सामान्य संसार का कारण नहीं हैं;.. सामान्य अर्थात् जो अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व था, अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व, वह नहीं। वह सामान्य संसार कहलाता है। अल्पस्थिति-रस पड़त है, उसकी यहाँ गिनती गिनने में नहीं आयी है। आहाहा! और वह भी समकिती को अशुभभाव आवे भले, परन्तु फिर भी आयुष्य जब बँधेगी, तब शुभभाव आयेगा, उसमें बँधेगी। आहाहा! चौथे गुणस्थान में चाहे वह लड़ाई में खड़ा हो, विषय-वासना में आ गया हो परन्तु उस समय उसे भविष्य की आयुष्य नहीं बँधेगी। आहाहा! क्योंकि आत्मा अबद्धस्पृष्ट चैतन्यमूर्ति भगवान दृष्टि और ज्ञान में निरन्तर परिणमा है, उसे भविष्य की आयुष्य बँधे, वह शुभभाव आयेगा तब बँधेगी। इतना इस दृष्टि और निर्मलता का जोर है। आहाहा!

अन्य प्रकृतियाँ.. अर्थात् मिथ्यात्व के साथ की ४१ बँधे, इसके अतिरिक्त। **अन्य प्रकृतियाँ सामान्य..** अनन्त। **संसार का कारण नहीं हैं;..** सामान्य अर्थात् मिथ्यात्व

का कारण नहीं है और मिथ्यात्व नहीं है, इसलिए सामान्य अनन्त संसार का कारण नहीं है। **मूल से कटे हुए वृक्ष के हरे पत्तों..** आहाहा! जिस वृक्ष का मूल काट डाला, पश्चात् उसके **हरे पत्तों के समान वे प्रकृतियाँ शीघ्र..** सूखनेवाली हैं। मूल काट दिया, उसके पत्ते सूख जानेवाले हैं। अल्प काल में अब वे पत्ते बढ़नेवाले नहीं हैं। आहाहा! मूल पहली चीज़ है। उस पर जोर नहीं और जोर सब यह व्रत, तप और त्याग, यह और वह... पंच कल्याणक करो बड़े...!

मुमुक्षु : पंच कल्याणक तो आपके हाथ से ही होते हैं, इसलिए बेचारे करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंच कल्याणक (के समय) शुभभाव होत है, दूसरा क्या? वह क्रिया तो जड़ की पर से होती है और शुभभाव हो, वह भी अपनी चीज़ नहीं है। आहाहा!

यह तो लेख आया, पृष्ठ आया है न! पृष्ठ! सौराष्ट्र में ऐसा कि श्रीमद् के कारण दिगम्बर धर्म शुरु हुआ, पश्चात् कानजीस्वामी के कारण दिगम्बर धर्म के मन्दिर हुए। प्रकाशित (लेख) आया था। कहीं का वह अखबार है। कल दोपहर में था। नहीं न? नियमसार है। यह पृष्ठ है, यह, इसमें आया है। यहाँ कई दिन का पड़ा था। सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय - लेखक : श्री सत्य। ऐसा करके सब लिखा है। श्रीमद् के कारण हुआ, पश्चात् कानजीस्वामी के कारण सौराष्ट्र में जिनमन्दिर हुए, दिगम्बर धर्म (विस्तार को प्राप्त हुआ)। आहाहा! यह तो बाहर की बातें हैं। बाहर में हो और न हो, उसके साथ कुछ (लेना-देना नहीं है)। आहाहा!

मूल से कटे हुए वृक्ष के हरे पत्तों के समान वे प्रकृतियाँ शीघ्र ही सूखने योग्य हैं। जिस वृक्ष का मूल काटा, उसके पत्ते थोड़े दिन में सूख जाएँगे। इसी प्रकार जिसने मिथ्यात्व की गाँठ गला डाली और आत्मा का सम्यग्दर्शन किया, उसे दूसरी प्रकृतियाँ जो थोड़ी हैं, वे थोड़े काल में सूख जानेवाली हैं। आहाहा! ऐसा कठिन।

अब, समकिती को अशुभभाव हो तो भी कहते हैं कि उसका वह जाननेवाला है और उसे बन्ध पड़ता है, वह निश्चय से नहीं। मिथ्यादृष्टि को भक्ति आदि पुण्य का शुभभाव हो तो कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि को अनन्त संसार का कारण है। राग के साथ एकता और स्वभाव के साथ एकता, ऐसी यह वस्तु है। आहाहा! यह जगत को जँचना कठिन है। आहाहा!

कलश–११४

अब, 'ज्ञानमय भाव ही भावास्रव का अभाव है' इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:–

(शालिनी)

भावो रागद्वेष–मोहैर्विना यो जीवस्य स्याद् ज्ञान–निर्वृत्त एव।
रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान् एषोऽभाव: सर्वभावास्रवाणाम्।।११४।।

श्लोकार्थ : [जीवस्य] जीव का [य:] जो [रागद्वेषमोहै: विना] रागद्वेषमोहरहित, [ज्ञाननिवृत्त: एव भाव:] ज्ञान से ही रचित भाव [स्यात्] है और [सर्वान् द्रव्य–कर्मास्रव–ओघान् रुन्धन्] जो सर्व द्रव्यकर्म के आस्रव समूह को (–अर्थात् थोकबन्ध द्रव्यकर्म के प्रवाह को) रोकनेवाला है, [एष: सर्व–भावास्रवाणाम् अभाव:] वह (ज्ञानमय) भाव सर्व भावास्रव के अभावस्वरूप है।

भावार्थ : मिथ्यात्वरहित भाव ज्ञानमय है। वह ज्ञानमय भाव रागद्वेषमोहरहित है और द्रव्यकर्म के प्रवाह को रोकनेवाला है; इसलिए वह भाव ही भावास्रव के अभावस्वरूप है।

संसार का कारण मिथ्यात्व ही है; इसलिए मिथ्यात्वसम्बन्धी रागादि का अभाव होने पर, सर्व भावास्रवों का अभाव हो जाता है, यह यहाँ कहा गया है।।११४।।

श्लोक - ११४ पर प्रवचन

अब, ज्ञानमय भाव ही.. मिथ्यात्व जाने के बाद जो आत्मज्ञान हुआ और आत्मा की श्रद्धा, स्थिरता आदि (हुए), वे सब आत्मभाव हुए। अनन्त गुणों की पर्याय प्रगट हुई, वह सब आत्मामय हुई। समकित कहा न! 'सर्व गुणांश, वह समकित।' जितने गुण हैं, उनकी व्यक्त अंश सब पर्यायें प्रगट हुई, वे सब ज्ञानमय भाव हैं, आनन्दमय हैं, स्वभावमय हैं। आहाहा! **ही भावास्रव का अभाव है.. 'ज्ञानमय भाव ही भावास्रव का अभाव है'..** मिथ्यात्वरूपी भावास्रव। आहाहा! उसका अभाव है। **इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:–** लो! ११४ (कलश)

भावो रागद्वेष-मोहैर्विना यो जीवस्य स्याद् ज्ञान-निर्वृत्त एव।
रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान् एषोऽभावः सर्वभावास्रवाणाम् ।।११४।।

जीव का जो रागद्वेषमोह.. बिना। यह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी, ये लेना। **रागद्वेषमोह रहित, ज्ञान से ही रचित भाव..** यहाँ ऐसा कहते हैं कि बिल्कुल रागरहित का, वह नहीं। राग की एकता की बुद्धिवाला राग-द्वेष, उस रहित भाव। राग-द्वेष हो। यह बात तो हो गयी है कि अस्थिरता में गयी। आहाहा! एकता में जो संसार था, वह अस्थिरता में संसार अल्प रह गया। राग की एकता के मिथ्यात्वभाव में जो अनन्त संसार था, वह अस्थिरता में अल्प संसार रह गया। वह अल्प संसार भी सूख जानेवाला है, स्वभाव की दृष्टि के जोर से (सूख जानेवाला है)। आहाहा! ऐसा है।

रागद्वेषमोह रहित,.. अर्थात् समझ में आया? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेषरहित, ऐसा। समस्त राग-द्वेषरहित, ऐसा नहीं। **ज्ञान से ही रचित..** इस आत्मा के स्वभाव से ही बना हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान शान्ति की स्थिरता, स्वरूपाचरण, आनन्द, वीतरागता इत्यादि। इस **ज्ञान से ही रचित भाव है और 'सर्वान् द्रव्य-कर्मास्रव-ओघान् रुन्धन्' जो सर्व द्रव्यकर्म के आस्रव समूह को (-अर्थात् थोकबन्ध द्रव्यकर्म के प्रवाह को) रोकनेवाला है,..** अर्थात् वह आता नहीं, ऐसा। रोकनेवाला का अर्थ यह है। आते हुए को रोका है, ऐसा नहीं।

जो सर्व द्रव्यकर्म के आस्रव समूह को.. जो मिथ्यात्व में और अनन्तानुबन्धी के भाव में जो आस्रव आता था, वह समूह यहाँ समकित दर्शन, ज्ञान और शान्ति की स्थिरता के भाव में वह द्रव्य आस्रव रुँध जाता है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी से जो आस्रव आता था, वह आस्रव रुँध जाता है। आहाहा! अब लोगों को ऐसा सूक्ष्म पड़ता है, फिर उन्हें जोड़ दिया व्रत, तप, उपवास और शरीर से ब्रह्मचर्य पाले तो हो गया धर्म! अब ऐसा तो अनन्त बार किया है, बापू!

अन्दर भगवान वीतरागमूर्ति (आत्मा) पड़ा है, उसकी एकता बिना और राग की एकता टूटे बिना उसे जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। आहाहा! यह तो भव के अन्त की बात है। आहाहा!

सर्व द्रव्यकर्म के आस्रव समूह को.. ओघ है न? **ओघ, ओघान्** द्रव्यकर्मास्रव। **ओघ, ओघ** बड़ा। **ओघान्** उसे रोकनेवाला है। आहाहा! क्या कहते हैं? आत्मा चैतन्य भगवान जहाँ राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता का परिणमन किया, तब जो पहले मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग के काल में जो द्रव्यास्रव का थोक आता था, वह अब यहाँ नहीं आता। रोकने का अर्थ (यह कि) वह नहीं आता। समझ में आया? आता था और रोका है, ऐसा नहीं। उसे वह आता ही नहीं। उसे आने का पहले मिथ्यात्व के समय में था, वह अभी आता नहीं, ऐसा। आने का था, उसे रोका है—ऐसा नहीं। ऐसी बातें हैं। कथन में क्या आवे? समझाना है, उसमें (ऐसा ही आता है)। पहले आता था और अभी नहीं आता, इस अपेक्षा से उसे रोका है, (ऐसा कहा)।

सर्व द्रव्यकर्म के आस्रव को.. आहाहा! **(-अर्थात् थोकबन्ध द्रव्यकर्म के प्रवाह को)..** राग की एकताबुद्धि में जत्थाबन्ध कर्म आते थे। आहाहा! उसे **रोकनेवाला है,..** कौन? ज्ञानमय भाव, आत्मामय भाव। राग की एकताबुद्धिरहित स्वभाव की एकता का भाव, कर्म के ओघ को-थोक को रोकनेवाला है। आहाहा!

'एषः सर्व-भावास्रवाणाम् अभावः' और **वह (ज्ञानमय) भाव सर्व भावास्रव के अभावस्वरूप है।** दोनों बातें ली हैं। जड़कर्म का जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का थोक आता था, वह नहीं आता और जो मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष का आस्रव-भाव (आस्रव) था, भाव, वह नहीं होता। द्रव्यास्रव जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के समय जो द्रव्यास्रव आता था, वह यहाँ सम्यग्दर्शन की परिणति में वह नहीं आता। और उसे भावास्रव जो मिथ्यात्व और राग का था, वह भावास्रव यहाँ नहीं है। द्रव्यास्रव रुक गये और भावास्रव है नहीं। अरे.. अरे..! भावास्रव अर्थात् यह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जो भाव, वह भावास्रव है। है न सामने? पुस्तक है या नहीं? आहाहा!

(वह ज्ञानमय) **भाव सर्व भावास्रव के अभावस्वरूप है। 'एषः सर्व-भावास्रवाणाम् अभावः'** आहाहा! उसे द्रव्यास्रव मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का (आस्रव) आता था, वह तो नहीं। सम्यग्दर्शन होने पर, राग की एकता टूटने पर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जो भावास्रव था, वह भी इसे है नहीं। द्रव्यास्रव आता नहीं, भावास्रव है नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का भावास्रव।

भावार्थ : मिथ्यात्व रहित भाव.. ज्ञातादृष्टा स्वभाव का भाव। दया, दान, व्रतादि के विकल्प की एकतारहित भाव। आहाहा! वह **ज्ञानमय है।** वह आत्मामय है, वह स्वभावमय है, वह शुद्ध है। आहाहा! मिथ्यात्वरहित भाव, वह ज्ञानमय है, समकितमय है, शान्तिमय है, वीतरागपर्यायमय है। वह चौथे (गुणस्थान में)!

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी का जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अनन्तानुबन्धी का गया, उतनी स्वरूपाचरण वीतरागता आयी। वे बहुत इनकार करते हैं न! (समकिती को) स्वरूपाचरण नहीं है। वह विद्यासागर इनकार करते हैं, नहीं? विद्यासागर नाम न? लिखा है। वे इनकार करते हैं। अरे!...परन्तु प्रभु! आहाहा!

आत्मा जिनस्वरूप त्रिकाल है। उसका जहाँ जिनस्वरूप का (भान हुआ)... राग से एकताबुद्धि में संसार था, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का (भाव था), वह भाव अब समकित के भाव के समय वह भाव नहीं है। वह भाव नहीं तो ज्ञानमय भाव में, श्रद्धामय आया, शान्तिमय आया, स्थिरता आयी, आंशिक वीतरागता आयी, आंशिक आनन्द आया। आहाहा! जितनी शक्तियाँ हैं, उनकी आंशिक व्यक्त दशा (हुई), वह ज्ञानमय भाव कहा, राग नहीं। समझ में आता है न? आहाहा! भाषा तो सादी है, ऐसा समझ में आये ऐसा है।

आहाहा! सन्तों ने जगत को निहाल कर दिया है! आहाहा! न्यालकरण! उन लोगों में आता है। स्वामी नारायण थे न? स्वामी नारायण जहाँ-तहाँ शराब को छुड़ावे। न्यालकरण... न्यालकरण कहते उन्हें। स्वामी नारायण काठी में जाए (वहाँ), माँस छुड़ावे, शराब छुड़ावे, ऐसा छुड़ावे इसलिए (लोग कहे) न्यालकरण.. न्यालकरण.. न्यालकरण। अब उसमें क्या? वह तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की एकता का राग छुड़ाया, वह न्यालकरण है। आहाहा! और न्याल जो आत्मा का न्याल है, वह दशा प्रगट हुई। आहाहा!

मिथ्यात्व रहित भाव ज्ञानमय है। वह ज्ञानमय भाव रागद्वेषमोह रहित है.. देखा? चौथे गुणस्थान में या पाँचवें में भी जो निर्मल परिणति हुई, वह तो राग-द्वेष-मोह रहित है। मोह अर्थात् मिथ्यात्व। राग-द्वेष अनन्तानुबन्धी आदि। इनसे रहित परिणमन है। आहाहा! आस्रव अधिकार! आगे १७० (गाथा में) लेंगे। जघन्यरूप से है, इसलिए

यथाख्यात नहीं है, तब तक उसे आस्रव आता है, परन्तु यह नहीं। राग की एकताबुद्धि का मिथ्यात्वभाव का जो आस्रव, उसमें दर्शनमोह आता है। आहाहा! और चारित्र में तो अनन्तानुबन्धी का भाव आता है। आहाहा!

वह ज्ञानमय भाव रागद्वेषमोह रहित है.. आहा! मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के। मिथ्यात्व—मोह और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेषरहित है। आहाहा! अब इसे स्वरूपाचरण नहीं कहना, तब क्या कहना इसे? यहाँ तो बिल्कुल राग की एकतारहित भाव और बन्ध अधिकार में भी यह कहेंगे, उपयोग में राग को एकत्व करता है, वह बन्ध का कारण है, ऐसा वहाँ कहा है। राग बन्ध का कारण, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! उपयोग की शुरुआत की है, बन्ध अधिकार में, पाँच गाथा। उपयोग में राग को एकत्व करे, वह मिथ्यात्व बन्ध का कारण है। आहाहा! बन्ध... बन्ध अधिकार! चारों ओर से देखो तो... आहाहा! वस्तु की खबर नहीं होती।

सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर पूर्णानन्द का सागर! अनन्त गुण गम्भीर महासमुद्र पड़ा है। है अरूपी परन्तु वह स्वभाव का समुद्र है। आहाहा! उसका जहाँ श्रद्धा-ज्ञान होता है, तब मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के जो आस्रव आते थे, वे रुक गये और भावास्रव जो मिथ्यात्व के थे, वे भी नहीं हैं। द्रव्यास्रव नहीं और भावास्रव भी नहीं। आहाहा! **और द्रव्यकर्म के प्रवाह को रोकनेवाला है; इसलिए वह भाव ही भावास्रव के अभावस्वरूप है।** दोनों लिये। आहाहा! समझ में आया? झाँझरीजी! ऐसी (अलौकिक) बात है!

आहाहा! कहते हैं कि जहाँ मिथ्यात्व की गाँठ गल गयी, वहाँ अन्दर ज्ञानमय भाव रहता है यहाँ तो। आहाहा! आत्मामय! ज्ञानमय अर्थात् आत्मामय। आत्मा के जो शुद्धस्वभाव अनन्त हैं, उनकी पर्याय में अनन्त भाव का ज्ञानमय, आनन्दमय, शान्तिमय, श्रद्धामय, उन सब पर्यायों की व्यक्तता अकेला परिणमन ही रहता है। आहाहा! उसे द्रव्यकर्म जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का आता था, वह तो रुक गया परन्तु मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के जो भावास्रव हैं, उस ज्ञानमय भाव में ये नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए वह भाव ही भावास्रव के अभावस्वरूप है। यहाँ कहा, देखो! **संसार का कारण मिथ्यात्व ही है;..** मिथ्यात्व 'ही' कहा है। एकान्त नहीं कर डाला? मिथ्यात्व

ही संसार का कारण है ? फिर दूसरा कोई कारण नहीं ? भाई ! दूसरे हैं, वे अल्प हैं, उनकी गिनती नहीं है। अनन्त-अनन्त नरक और निगोद के भव, बापू ! यह चौरासी लाख के अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भव, उनका कारण एक मिथ्यात्व ही है। आहाहा ! समकित होने के बाद एक, दो-चार भव हों, वे कहीं गिनती में नहीं है, वे तो ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा !

संसार का कारण मिथ्यात्व ही है;.. और अन्यत्र भी आता है। मिथ्यात्व ही आस्रव है। वास्तव में तो वही आस्रव है। आहाहा ! अब यह टीका करनेवाले ऐसा कहते हैं, उन्हें एकान्त कोई सिद्ध कर दे। लो ! मिथ्यात्व ही संसार (यह) एकान्त है। सुन न ! और समकित है, वही मोक्ष का कारण और मोक्ष है। जैसे मिथ्यात्व, संसार है; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष है। आहाहा ! क्योंकि मोक्ष-मुक्तस्वरूप की प्रतीति अनुभव में आयी, वह मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा ! प्रवचनसार में कहा न ! पाँच गाथा ! पाँच गाथा मोक्षमार्ग की है, तो भी मोक्षतत्त्व कहा है। आहाहा ! क्या शैली ! निज स्वभाव को प्राप्त करने के लिए शैली ! आहाहा ! दूसरे लाख क्रियाकाण्ड करे, दया, व्रत, तप, भक्ति और पंच कल्याणक करे तथा बड़ा गजरथ निकाले। इस सम्यग्दर्शन की श्रद्धा के भान बिना वह सब संसार खाते है। आहाहा !

संसार का कारण मिथ्यात्व ही है;.. ही, ही है, ऐसा कहा है। तब फिर अव्रत और प्रमाद, कषाय नहीं ? यही कारण है ? वे अनन्त संसार का कारण नहीं। **इसलिए मिथ्यात्वसम्बन्धी रागादि का अभाव होने पर, सर्व भावास्रवों का अभाव हो जाता है, यह यहाँ कहा गया है।** इस प्रकार के सर्व भावास्रव जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के, (उन) सर्व भावों का इसे अभाव हुआ। सर्व भाव का - आस्रव का अभाव हुआ, ऐसा यहाँ कहा है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)